'धर्म व आचार' ही संस्कृति के प्रबल पोषक

*डॉ. भास्कर शर्मा

प्रस्तावना –

देशधर्मान्जाति धर्मान्कुल धर्मांश्च शाश्वतान्।

पाखण्ड गणधर्मांश्च शास्त्रेस्मिन्नुक्तवान्मनुः।।

महर्षि मनु ने इस ग्रन्थ में समस्त प्रकार के देश, धर्मों, विभिन्न वर्णों तथा परम्परागत आचार–विचारों का, कुल धर्मों का तथा पाखण्डी लोगों द्वारा संसार में प्रचलित वेद विरूद्ध त्याग करने योग्य धर्मों का वर्णन किया है।

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में वैदिक साहित्य के बाद स्मृतिग्रंथ एवं धर्मशास्त्र आते हैं। श्रुति (वेद) का शाब्दिक अर्थ सुनने से है तथा स्मृति का सम्बन्ध स्मरण रखने से है। इसीलिए श्रवण परम्परा प्रचलित ज्ञान भण्डार श्रुति अथवा वेद कहलाये तथा स्मरण से प्रचलित शास्त्रीय नियम, परम्पराएं व आचार संहिताएं स्मृति अथवा धर्मशास्त्र है। मनु स्वयं भी यही उपदेश करते हैं। यथा–

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वैस्मृतिः।

ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हिनिर्वभौ।।[1]

अर्थात् यहां श्रुति शब्द का अर्थ वेद और स्मृति शब्द (भगवान् मनु तथा महर्षियों द्वारा कथित ज्ञान) का धर्मशास्त्र है। इनके सभी विषय प्रामाणिक एवं सत्य है। उनके विरूद्ध कोई तर्क नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि इन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

इस प्रकार श्रुति वेदों को कहा जाता है तथा स्मृतियां धर्मशास्त्र है, स्मृति ग्रंथ वेदमूलक है। वेदों में सूत्र रूप में जो कुछ वर्णित है, उसी की व्याख्या स्मृतिग्रंथों में हुई है। स्मृतियां वेदों के गूढ़ ज्ञान का व्यावहारिक व क्रियात्मक रूप है। इनमें मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए आचार व व्यवहार का निर्धारण किया है। इसलिए इन्हें आचार संहिता कहा जाता है।

मुख्यतः स्मृतियां अट्ठारह मानी जाती है इनमें से मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, पराशर, नारद, वृहस्पति, अंगिरस, दक्ष, यम, व्यास तथा संवर्त आदि स्मृतियां उपलब्ध हैं तथा शेष के उद्धरण संग्रह ग्रंथों एवं भाष्य ग्रंथों में उपलब्ध है।

स्मृतियों में सबसे प्राचीनतम्, श्रेष्ठतम् एवं प्रामाणिक मनुस्मृति को माना जाता है। ऋग्वेद में 'मनु' को मानवजाति का पिता[2] प्रथम यज्ञ कर्त्ता सन्मार्ग का प्रवर्तक[3] कहा गया है। शास्त्रग्रंथों एवं पुराणों के अनुसार सृष्टि के आरम्भ से लेकर कई मन्वन्तर हुए हैं जिनके चलाने वाले विभिन्न मनु बताए हैं। मनुस्मृति में उल्लिखित है कि 'मनु' कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि इनकी परम्परा रही है।[4] वायु पुराण में भी विभिन्न मनुओं की सत्ता होने की बात कही गयी है। यथा –

स वैस्वायं भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते

तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते।।[5]

स वैस्वायं भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते

तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते।।[6]

मनु को 'विदुरनीति' में भी समाज का प्रथम संविधान रचयिता कहा गया है तथा उनका उपदेश शिष्य–परम्परा द्वारा लोक में विस्तृत हुआ माना गया है।[7]

बारह अध्यायों में विभक्त मनुस्मृति में लगभग 2694 श्लोकों में मुख्यतः आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित्त का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके प्रत्येक आयु, वर्ग एवं आश्रम के मानव के लिए कर्तव्याकर्तव्य का निर्देश देश–कालानुसार किया गया है। इसे धर्मशास्त्र कहा गया है क्योंकि इसमें धर्म का निर्देश किया गया है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका सम्बन्ध धारण करने से है जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार से की जा सकती है। 'धरति लोकान् इति धर्मः' अर्थात् जो संसार को धारण करता है वही धर्म है। किसी भी वस्तु की वह शक्ति, जो उसे उसके स्वरूप में स्थिर रखती है उसका धर्म कहलाती है। इस प्रकार जो वस्तु के स्वरूप को धारण करता है उसे नष्ट नहीं होने देता वह उसका धर्म है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, दान, संयम, धैर्य आदि सभी वर्गों तथा आश्रमों द्वाा व्यवहार में लाये जाने वाले धर्मों को सामान्य धर्म कहा जाता है तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि के लिए निर्दिष्ट विशिष्ट कर्त्तव्य विशेष धर्म कहे जाते हैं। मनुस्मृति में वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा का प्रिय इन चारों को साक्षात् धर्म का लक्षण कहा है। यथा–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[8]

इनके अतिरिक्त धैर्य, क्षमा, मनोनिग्रह, अस्तेय पवित्रता, इन्द्रिय–संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अक्रोध इन दस को भी धर्म लक्षण में समाहित किया गया है। यथा–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।

अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।।

दशलक्षणकं धर्ममनुनिष्ठन्समाहितः।

वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः।।[9]

इन सबके सार–स्वरूप मनुस्मृति में 'आचारः पमो धर्म'[10] कहकर आचार को ही धर्म का स्वरूप कहा है। अर्थात् वेदों, स्मृतियों में बताया गया आचार ही परम धर्म है। अतः आत्मा का हित करने के अभिलाषी द्विज को इस आचा का पालन करने का सदा प्रयत्न करना चाहिए। महर्षि मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य 'द्विज' है। द्विज का अर्थ होता है जिसका दो बार जन्म हो। अर्थात् जन्म के समय मनुष्य ज्ञान रहित एवं शिक्षाविहीन होने के काण शूद्र की श्रेणी में आते हैं। जब उनका यज्ञोपवीत संस्कार होता है तथा वे गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। तब

उनका दूसरा जन्म होता है इसी कारण वे 'द्विज' कहलाते हैं।

जो ब्राह्मण अपने आचार से भ्रष्ट हो जाता है वह वेद पाठ के फल को प्राप्त नहीं करता है परन्तु आचारवान ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदोक्त फलों का अधिकारी होता है। यथा –

जन्मना जायते शूद्रः संस्कोण द्विज उच्यते।

आचारद्विच्युतो विप्रो नवेदफलमश्नुते।

आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाक्स्मृतः।।[11]

इस प्रकार मनु महाराज ने आचार को सर्वोपरि प्रधानता दी है। अतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात उच्च स्तर का आचरण है। जो उच्च आचरण का पालन नहीं करता, उसे ब्राह्मण होने और वेदपाठ करने पर भी उसका फल नहीं मिलता है।

ऋषि–मुनियों ने अपने अनुभव से यह जाना कि आचार से ही धर्म की गति है। आचार से रहित होने पर धर्म स्थिर नहीं रह सकता और न ही चल सकता है। अतः ऋषि–महर्षियों ने आचार को समस्त प्रकार की तपस्याओं का मूल आधार माना है। यथा –

जन्मना जायते शूद्र संस्कारेण द्विज उच्यते।

विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय कथ्यते।।

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।

सर्वस्य तपसो मूलामाचारं जगृहुः परम्।।[12]

मनुस्मृति के अनुसार धर्म और आचार पृथक–पृथक न होकर एक ही सिक्के के दो पहलू है और कदाचित अपने व्यापक अर्थों में आचार ही परम धर्म है अर्थात् कर्त्तव्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। डॉ. राधाकृष्णन भी मनुस्मृति के इस कथन के समर्थक प्रतीत होते हैं। वे भी धर्म का अर्थ आचार से लेते हैं। अतः स्पष्ट है कि धर्म किसी संकीर्णता अथवा कट्टरता का वाचक नहीं हैं अपितु आचार अथवा कर्त्तव्य का पर्याय है।[13]

याज्ञवलक्य स्मृति के अनुसार भी पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र और व्याकरणादि छः अंगों सहित वेद चौदह विद्या के और धर्म के स्थान कहे हैं। यथा–

पुराणान्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।[14]

याज्ञवल्क्य ऋषि के मतानुसार केवल विद्या से अथवा केवल (शमदमादि) तपस्या से ही कोई सुपात्र नहीं होता है। जिस पुरुष के आचरण में विद्या और तपस्या दोनों ही हों वह श्रेष्ठ पात्र है। यथा –

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता

यत्र वृत्तमिमे चोभो–तद्भि पात्रं प्रकीर्तितम्।।[15]

स्मृतिग्रंथ के अनुसार जब कोई देश अपने वश में आ जाए तो जो उसका आचार, व्यवहार और कुल की मर्यादा हो

उसका उसी रूप में वह पालन करे। यथा–

यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितिः।

तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः।।[16]

सृष्टि के प्रत्येक वर्ग एवं वर्ण के लिए आचार नियमों के अतिरिक्त 'मनु' ने पातक एवं प्रायश्चित्त का विधान भी किया है, जिसका ज्ञान आज समाज में बढ़ते हुए नरसंहार, लूटपाट, हिंसा, बलात्कार, आतंकवाद आदि घटनाओं को कम करने में सहायक हो सकता है। मनुष्य जब ऐसे आचरण करता है जो शास्त्रों में वर्जित होते हैं, वही आचरण पातक या पाप कहलाते हैं। पातकों के संबंध आचार–शास्त्र की अपेक्षा धर्म से अधिक है, किन्तु धर्म एवं आचार के परस्पर समवित होने के कारण यहां आचार प्रसंग में पातक एवं प्रायश्चित्त का विवेचन भी आवश्यक है क्योंकि पातक एक ऐसा कृत्य है जो नैतिक दृष्टिकोण के विरूद्ध होता है। आत्मा का अभ्युदय करने वाले कृत्यों को 'धर्म' कहा है तथा आत्मा का पतन करने वाले कर्मों को 'अधर्म' अथवा पातक कहा जाता है। महापातक एवं उपपातक दो प्रकार के होते हैं। महापातक चार कहे जाते हैं – ब्रह्महत्या, मद्यपान, ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी, गुरुपत्नी से संसर्ग तथा इन कृत्यों को करने वाले के साथ रहना। इन पातकों के अतिरिक्त गोवध, परस्त्रीगमन, आत्मविक्रय, गुरु एवं माता–पिता का त्याग, पुत्र–त्याग, कन्या–दूषण, सूद लेना, चोरी करना तथा ऋण न चुकाना एवं नास्तिक होना आदि उपपातक कहे गए हैं। यथा –

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।

महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह।।[17]

इसी प्रकार मनुस्मृति में अन्य पातकों एवं महापातकों का विधान भी विस्तार से किया है परन्तु यहां सबका वर्णन कर पाना अपेक्षित नहीं है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पाप करने वाला मनुष्य यह सोचता है कि उसके पाप को कोई नहीं देख रहा है परन्तु ऐसा नहीं होता है। ईश्वर तथा उसका अपना अन्तःकरण उसको देखता है, किसी भी अनुचित कार्य को करते समय प्रत्येक मनुष्य का अन्तःकरण सचेत अवश्य करता है तथा उस अनुचित कार्य को करने से रोकता है, क्योंकि आत्मा ब्रह्म का स्वरूप होता है। वह हमारे शुभाशुभ कर्मों का साक्षी होता है। यथा–

मन्यते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः।

तास्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवन्तर पुरुषः।।[18]

मनुस्मृति में कहा गया है कि पाप कर्मों को छिपाना नहीं चाहिए, क्योंकि पाप छुपाने से बढ़ता है। अतः पापी को अपना पाप वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र के ज्ञाता को बतलाना चाहिए।[19] पापी जैसे–जैसे अपने पाप को स्वयं प्रकट करता है वैसे–वैसे उस अधर्म से उसी प्रकार छूटता जाता है। जैसे सर्प केंचुली से छूटता है। यथा –

यथा यथा नरोऽधर्मे स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।

तथा तथा त्वचेवाहित्तेनाधर्मेण मुच्यते।।[20]

निष्कर्ष –

वर्तमान संदर्भ में पुनः आवश्यकता है मानव के मानवीय गुणों का एवं आचार का उद्‌बोधन कराने की, जिसके लिए मानवीय मूल्यों की भण्डागार मनुस्मृति प्रतिपादित आचार–संहिता सहायक सिद्ध हो सकती है। यद्यपि वर्तमान में अक्षरशः इनका पालन संभव नहीं है क्योंकि विभिन्न स्थान एवं समय में आचार नियम भी भिन्न होते हैं। तथापि इनमें

बहुत ऐसे नियम हैं जिनका पालन वर्तमान में होने से समाज में व्याप्त, अशान्ति, असंतोष, हिंसा, बलात्कार, आतंकवाद, चोरी–डकैती, हत्या एवं अनेक ऐसी बुराईयां है जिनको रोकने में सहायक है। धर्मशास्त्रों द्वारा दिए गए उपदेशों को मानने से मानव की बुद्धि एवं विचार शुद्ध रहते हैं जिसके कारण हमारी संस्कृति उन्नत होती है और बुरे आचरण से होने वाली कोई भी घटना नहीं होती है। शुद्धाचरण को ग्रहण करने का हमारे धर्मशास्त्र उपदेश देते हैं ताकि समाज एवं राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति वर्तमान में होने वाली अनेक अमानवीय घटनाएं न हो सके। छान्दोग्योपनिषद् का कथन है – 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पेसुमस्ति।' अर्थात् व्यापकता में ही शाश्वत सुख है। इस बात का प्रमाण है। जितनी अधिक आत्मीयता की परिधि होगी, उतनी ही अधिक सुख एवं शान्ति होगी। इस प्रकार की भावना वैदिक काल से ही चली आ रही है कि उच्च–आचरण द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो सकता है। क्योंकि एक आचारवान, चरित्रवान मनुष्य ही समाज की एवं अपने परिवार की उन्नति करने में सहायक होता है।

श्रेष्ठ आचरण एवं श्रेष्ठ व्यवहार के लिए मनुस्मृति का स्थान सर्वप्रथम आता है। स्मृतिग्रंथों एवं धर्मशास्त्रकारों ने सृष्टिकल्याणार्थ ऐसे ग्रंथों की रचना करके सृष्टि का कल्याण किया है। अतः इन ग्रंथों का अध्ययन–अध्यापन कर हम अपने आप सहित राष्ट्र एवं समाज की भी उन्नति कर सकते हैं।

***व्याख्याता**
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ

1. मनुस्मृति, 2.10
2. ऋग्वेद, 1.80.16, 1.114.2, 2.33.13
3. ऋग्वेद, 10.63.3, 8.30.3
4. मनुस्मृति, 1.36
5. वायुपुराण
6. वायुपुराण
7. विदुरनीति, भूमिका भाग
8. मनुस्मृति, 2.11
9. मनुस्मृति, 6.91–93
10. मनुस्मृति, 1.109, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.5.122
11. मनुस्मृति, 1.110
12. मनुस्मृति, 1.111, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.2.10

13. धर्म और समाज, डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 123
14. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.1.3
15. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.9.200
16. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.13.343
17. मनुस्मृति, 11.54–66
18. मनुस्मृति, 8.85
19. पाराशर स्मृति, 8.6
20. मनुस्मृति, 11.228, 229